श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका
શ્રી કૃષ્ણ પ્રણામી ધર્મ પત્રિકા

एक बेर मतू महेता संग, आए हते परदेश ।
तहाँ देहुरे साधु बहुत, देखे बीच विदेश ॥

कच्छमें साधु, सन्तोंसे परमात्माके विषयमें चर्चा करते हुए श्री देवचन्द्रजी महाराज

मार्च २०१०

वर्ष ८२ श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर अंक ३

www.krishnapranami.org

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर चेतनधाम गंगापुरमें आयोजित
श्री तारतम सागरके १०८ पारायण ज्ञानयज्ञके विविध दृश्य

मांडासण गाँवमें आयोजित त्रिदिवसीय सत्संग समारोहके विविध दृश्य

श्रीकृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका

संस्थापक : ब्रह्मलीन आचार्य श्री १०८ धनीदासजी महाराज

वि.सं : २०६६ निजानन्दाब्द : ४२८ बुद्धजी शाका : ३३३

वर्ष : ८२ मार्च २०१० अंक : ३

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामित्व } जगद्गुरु आचार्य श्री १०८ कृष्णमणिजी महाराज

मुद्रण एवं प्रकाशन स्थल } श्री ५ नवतनपुरी धाम, खीजड़ा मन्दिर जामनगर - ३६१ ००१ (गुजरात) भारत

सम्पादक : शास्त्री श्री लक्ष्मण चैतन्य *एवं* श्री कनकराय व्यास

वार्षिक शुल्क रु. १००/- | १५ वर्षीय शुल्क रु. १०००/-

पता : श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका, श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर ३६१ ००१

फोन : (०२८८) २६७ २८२९ फेक्स (०२८८) २५५ १३५३

E-mail : navtan@sancharnet.in, navtanpuri@gmail.com

website : www.krishnapranami.org/www.krishnadham.org

• अब तो लाभ लीजिए •

श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिकाको online पढ़नेके लिए

www.krishnapranami.org

श्री तारतम सागर मूल तथा अर्थके साथ online पढ़ने के लिए

www.shritartamsagar.org

श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिकामें लेख आदि भेजनेके लिए

E-mail : navtanpuri@gmail.com

महामति श्री प्राणनाथजी

जगद्गुरु आचार्य श्री १०८ कृष्णमणिजी महाराज

प्राकट्य : महामति श्री प्राणनाथजीका प्राकट्य गुजरात प्रान्तके सुप्रसिद्ध नगर जामनगरके तत्कालिन मन्त्री श्री केशवराय ठाकुर तथा माता धनबाईके पुत्रके रूपमें मेहेराजके नामसे वि. सं. १६७५(१६१८ ई.) आश्विन कृष्णा चतुर्दशी रविवारके दिन प्रातः ९-०० बजे हुआ था । बाल्यावस्थासे ही उनमें प्रखर प्रतिभा, धर्मनिष्ठ, आत्म-चिन्तन एवं सूक्ष्मावलोकन जैसे विशिष्ट गुण दिखाई देने लगे । उनकी शिक्षा भी राजकीय सम्मानके साथ हुई ।

गुरुदीक्षा : उनदिनों जामनगरमें निजानन्द स्वामी सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराजकी सत्संग-चर्चासे सभी लोग प्रभावित थे । उनमें केशवराय ठाकुरका परिवार भी सम्मिलित था अतः मेहेराजको बारह वर्ष दो माह दश दिनकी अल्पायुमें ही श्री देवचन्द्रजीके दर्शन तथा सत्संगका लाभ प्राप्त हुआ ।

श्री देवचन्द्रजी महाराज पांच वर्षकी अवस्थामें ही **मैं कौन हूं** तथा **यह संसार क्या है ?** इसकी खोजमें लगे थे । उन्होंने इसीलिए अपना गांव उमरकोट(वर्तमान सिंध प्रान्त पाकिस्तान) छोडा वहांसे आकर कच्छ भूजमें कुछ वर्ष खोज की फिर जामनगरकी ओर आए । उस समय जामनगरमें श्री श्याम सुन्दरजीके मन्दिरमें कान्हजी भट्ट नामक विद्वान श्रीमद्भागवतकी कथा करते थे । श्री देवचन्द्र महाराजने उनसे चौदह वर्ष पर्यन्त पूरी निष्ठासे कथा सुनी । उसी समय उन्हें अक्षरातीत पूर्णब्रह्मने दर्शन देकर आत्मा पहिचान करवायी । निजनाम महामन्त्र प्रदान करते हुए उन्होंने परमधामसे आई हुई ब्रह्मात्माओंकी जागनीका कार्य सौंपा तथा स्वयं भी उनके धामदिलमें विराजमान हुए । अब श्री देवचन्द्रजी सत्संग चर्चा करने लगे । जामनगरके तत्कालीन नगर शेठ गांगजीभाई जो उनके साथ ही कानजी भट्टसे भागवत कथा सुनते थे, सत्संगमें श्री देवचन्द्रजीके

प्रथम शिष्य बने । गांगजीभाईने देवचन्द्रजीकी गादी अपने घर पर ही स्थापित कर वहीं सत्संग चर्चाकी भी व्यवस्था कर दी । देवचन्द्रजीने करीब नौ वर्ष तक गांगजी भाईके घरपर रहकर सत्संग चर्चा की(वर्तमान इसे चाकला मन्दिर तथा देवचन्द्रजीके घरको राजमन्दिर कहा जाता है) । एक गृहस्थका घर आत्मज्ञानी संतको छोडना पड़ता ही था। श्री देवचन्द्रजीने समीपके बगींचेको इसके लिए उपयुक्त स्थान चुना जहाँ वे वर्षोंसे घूमने फिरने जाया करते थे। वि. सं. १६८७ के कार्तिक महीनेमें श्री देवचन्द्रजीने वहाँ पर श्री कृष्ण प्रणामी धर्म-निजानन्द सम्प्रदायके आचार्यपीठके रूपमें श्री ५ नवतनपुरी धामकी स्थापना की और नित्य प्रति वहाँ सत्संग चर्चा करने लगे । श्री देवचन्द्रजी जब इस बगीचेमें घूमने जाते थे वहाँ एक खीजड़ा(शमी)का वृक्ष था उन्होंने इसकी छोटी टहनी तोड़कर दातौन की और उसे पासमें जमीनमें दवा दी। वही टहनी हरी होकर कुछ वर्षोंमें पेड़ बन गई । वे दो वृक्ष आज भी यथावत् हैं। इन्ही वृक्षोंसे सग्ल्न कर श्री देवचन्द्रजी महाराजने मन्दिरकी स्थापना की। चर्चाके अवसर पर सुन्दरसाथको परमधामकी जमुनाजीका प्रत्यक्ष दर्शन करवाया । वही मन्दिर तथा श्री जमुनाजीका प्राकट्य स्थान आज भी यथावत है। खीजड़ाके वृक्षके साथ जुडे हुए होनेसे स्थानीय लोग इसे खीजड़ा मन्दिरके नामसे पुकारने लगे । श्री देवचन्द्रजीने रहनेके लिए एवं गादिके लिए जो पर्णकुटी बनवाई थी उसे आज गादी मन्दिरके रूपमें जाना जाता है यह श्री कृष्ण प्रणामी धर्म निजानन्द सम्प्रदायकी आचार्य गादी है ।

बालक मेहेराजने श्री ५ नवतनपुरी धाममें ही आकर गुरुदीक्षा ली थी। श्री देवचन्द्रजीने मेहेराजमें अक्षरातीत ब्रह्म श्री राजजीके आवेश युक्त परमधाम की इन्द्रावती सखीकी वासनाको परखा और उन्हें निजनाम प्रदान करते हुए अखण्ड परमधामकी ब्रह्मात्माओंकी जागनीसे सम्बन्धित आध्यात्मिक अपूर्व सम्पदाकी गूढ़ातिगूढ़ चर्चा सुनाई । श्री मेहेराजके मिलनेपर देवचन्द्रजीको आत्मातोष हुआ । उन्होंने यह निश्चय किया कि मेहेराज ही मेरा अवशिष्ट कार्यको पूर्ण करनेमें सक्षम बनेंगे । अन्ततः धर्मका सम्पूर्ण भार उनके हाथों सौंपकर वि.सं. १७१२ भाद्र शुक्ला चतुर्दशीके

दिन स्वयं भी आत्मारूपसे उनमें समाविष्ट हुए। मेहेराज श्री देवचन्द्रजीको प्राणनाथ कहते थे। उनके अन्तर्धान पश्चात् शनैः शनैः लोग श्री मेहेराजको प्राणनाथ कहने लगे। कालान्तरमें वे महामति श्री प्राणनाथजीके नामसे प्रसिद्ध हुए।

तारतम्य ज्ञानका चिन्तन करते हुए महामति श्री प्राणनाथजीको शास्त्रादिके रहस्य स्वतः खुलने लगे। इनकी अन्तरात्मा आनंद विभोर हो उठीं। उन्होंने संकल्प लिया, **'ये सुख देउं ब्रह्मसृष्टिको, तो मैं अंगना नार'**, **'ब्रह्मसृष्टि और दुनियां देऊं जगाय'**, **'सुख शीतल करूं संसार'** आदि आदि।

प्रचार यात्रा : श्री देवचन्द्रजीकी आज्ञासे महामति श्री प्राणनाथजीने अरब देशोंकी यात्रा की थी। वे पाँच वर्ष पर्यन्त वहाँ रहे। वहाँसे लौटकर ध्रोल और फिर जामनगरमें मंत्रीके रूपमें रहते हुए जनताकी सेवा की फिर सम्पूर्ण लौकिक कार्यको छोड़कर दिव्यज्ञानके प्रचार प्रसारसे अज्ञानजन्य अन्धकारमें भ्रमित आत्माओंको परम शान्ति और अखण्ड सुख प्रदान करने हेतु धर्म प्रचार यात्रामें निकले। जूनागढ़ अहमदाबादसे लौटनेके पश्चात् वे जामनगरसे सीधे दीवबन्दर पहुंचे वहांसे ठठ्ठानगर, नलिया, खम्भालिया होते हुए सूरत पहुंचे।

सूरतमें वेदान्तके प्रकाण्ड विद्वान एवं वैष्णव सम्प्रदायके धर्मधुरन्धर आचार्योंसे उनकी धर्मचर्चा हुई। सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मके स्वलीलाद्वैत भाव एवं परिपूर्ण स्वरूपको पहचान कर प्रत्येक मानवको अपनी आन्तरिक निर्मलताकी ओर उन्मुख होकर अपने उच्चतमलक्ष्यकी ओर अग्रसर होना चाहिए, न कि कर्मकाण्ड और बाह्य आडम्बरकी दलदलमें फँसकर अपनी आत्माको और अनुयायीको भी भ्रमित करना चाहिए। इस प्रकार उपदेश देते हुए महामतिने उनलोगोंको सच्चे वैष्णवका स्वरूपकी पहिचान भी करायी।

महामतिके दिव्य ज्ञानके प्रकाशमें आनेपर लोगोंके हृदयमें विद्यमान

वर्ग और जातिभेद रूपी अन्धकार मिट गया । बहुतसे ज्ञानी, ध्यानी, मानी, व्यक्ति अपने सुख वैभव छोड़कर निराभिमानी हो महामति द्वारा प्रदर्शित मार्गपर चलने लगे । महामतिने इन अनुयायियोंको सुन्दरसाथ की संज्ञा दी ।

मुल्लाकी बांग : कुछ समय पश्चात् सुन्दरसाथकी जमातके साथ सूरतसे प्रस्थान कर अहमदाबाद सिद्धपुर, बिन्दुसरोवर, पुष्करनाथ होते हुए सं. १७३१ में महामति राजस्थानके मेरता नगरमें पहुंचे । वहाँ जैन साधु लाभानन्द यतिसे धर्म चर्चा हुई । उनके सम्मुख यतिके मन्त्र–तन्त्र सब निष्फल हुए । राजारामभाई तथा झांझनभाई जैसे मारवाडी श्रीमन्त स्वामीजीके शिष्य बने जिन्होंने वर्षोंतक सैकड़ों सुन्दरसाथके सब प्रकारके खर्चकी व्यवस्था कर स्वजीवनको धन्य बनाया ।

एक दिन सांयकाल बगीचेमें भ्रमण करते हुए महामतिका ध्यान मुल्लाके बाँगकी ओर गया जिसका सूत्र था **'ला–इल्लाह–इल्लिल्लाह'** इस पर चिन्तन करते हुए उन्हें लगा कि जिस प्रकार गीता, भागवत एवं उपनिषदोंमें क्षर, अक्षर, तथा अक्षरातीत ब्रह्मकी चर्चा आती है यह कलमा भी इसीका संकेत करता है । उन्हें लगा कि भारतीय समस्त शास्त्र तथा मनीषियोंका एक ही स्वर है कि, **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** पूर्णब्रह्म परमात्मा एक है वही अक्षरब्रह्मके माध्यमसे संसारकी संरचना करता है तथा आदिनारायण(क्षरपुरुष)के रूपमें इसका अधिष्ठाता भी होता है अतः केवल हिन्दू धर्मके ग्रन्थ ही नहीं अपितु विश्वके सभी धर्मग्रन्थ इसी मतके पक्षधर होने चाहिए, भिन्नता केवल भाषा और शैलीका ही है ।

उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि हिन्दू और मुसलमानकी लड़ाई भी भाषा और शैलीपर ही आधारित है यथार्थतः सभीका लक्ष्य तो एक ही परमात्मा हैं । उन सभीके धार्मिक लक्ष्य तो एक ही परमात्मा हैं । उनमें धार्मिक समन्वयके भाव जागृत हुए । उस समय दिल्लीमें औरंगजेबका शासन था उसने मुस्लिम धार्मिक ग्रन्थोंका गलत अर्थ करते हुए देशमें समता और न्यायके मूल्योंको नष्टकर प्रचण्ड हिंसा और आतंकका वातावरण पैदा

किया था । प्रजामें इसके विरोधका नैतिक साहस भी नहीं था । महामतिको लगा कि अब दिल्ली जाकर सीधे ही औरंगजेबसे कुरानके माध्यमसे चर्चाकर उसकी कुनीतिमें परिवर्तन लाया जाय वे वहाँसे आगरा, मथुरा होते हुए दिल्ली पहुँचे ।

कुम्भ पर्व : १७३५ चैत्रका महीना था उन दिनों हरिद्वारमें कुम्भ मेला लग रहा था । भारतवर्षके विभिन्न सम्प्रदायके आचार्य संत महन्त विद्वान सब एकत्र होनेवाले थे । श्री प्राणनाथजीने सोचा कि यह अच्छा अवसर है । सभी धर्माचार्योंसे धर्मचर्चा की जाय । उस समय हिन्दू धर्म विभिन्न सम्प्रदायमें बंटा हुआ था । और वे लोग धर्मके नामपर लड़ाई किया करते थे । उनलोगोंको एक सूत्रमें सूत्रित कर औरंगजेबसे टक्कर लेना ज्यादा सरल रहेगा यह विचार कर वे अपने कुछ शिष्यों सहित हरिद्वार पहुंचे । वहाँ उन्होंने सभी धर्माचार्योंके धार्मिक मत सुने उन्हें प्रतीत हुआ कि प्राय: सभीके मत क्षर जगतकी भूमिकाओंका ही परिचय देते हैं । परमात्मा तत्वकी ओर सबका चिन्तन अतिन्यून दिखाई दिया । अत: उन्होंने क्षर, अक्षर और उत्तम पुरुषका परिचय करवाते हुए सभीसे कहा कि 'सकाम कर्मके बाह्य आडम्बरसे परिवेष्टित होनेपर मनुष्यमें सर्वदा अहंभाव ही पैदा होगा जिससे वह धर्मके मूल उद्देश्य जीवनका अभ्युदय और आत्माकी निश्रेयस सिद्धि(मोक्ष)को समझ नहीं पायेगा अत: आवश्यकता है आपसी मतभेदोंको भूलकर परम सत्यके अन्वेषणमें सब एकसाथ अग्रसर हों ।

इस प्रकार '**वसुधैव कुटम्बम्**' की भावना धार्मिक सहिष्णुता एकेश्वरवाद, परा प्रेम लक्षणा भक्तिका सुन्दर उपदेश देकर वहाँ उपस्थित सभी आर्चार्यों सन्तोंको महामतिने मन्त्रमुग्ध किया । आत्मविभोर हो सभीने महामतिको दिव्य अवतार श्री विजयाभिनन्द निष्कलंक बुद्धके रूपमें स्वीकार कर उनकी आरती की । जिस स्थानपर ब्रह्मचर्चा हुई थी आज भी वह स्थान हरिद्वारमें '**ब्रह्म**' चबूतराके नामसे प्रसिद्ध है ।

दिल्लीका जंग : महामति श्री प्राणनाथजी हरिद्वारसे दिल्ली आए ।

वे औरंगजेबसे सीधे बातचीत करना चाहते थे किन्तु शराअके आडम्बरकी ओटमें दुनियांको सतानेवाला व्यक्ति सत्य धर्मकी बात सम्मुख होकर नहीं सुन सकता था । महामतिजीने तथाकथित धर्मके रूपको खुली चुनौती दी । जन जागरण अभियान चलाया । ऐसे शिष्य तैयार किए जो धर्मकी वेदीपर स्वयंको न्यौछावर करनेमें हिचकते नहीं थे । उन्हीं दिनों सिखोंके गुरु तेगबहादुरजीकी हत्या हुई थी । वातावरण बड़ा भयावह था किन्तु महामतिने तो पूरी तरहसे कमर कस ली थी । उन्होंने अपने बारह प्रमुख शिष्योंको औरंगजेबके पास भेजा और स्वयंको कुरानके अनुसार इमाम मेहदी, बाइबलके अनुसार ईसाके द्वितीय अवतार एवं हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार निष्कलंक बुद्धके रूपमें सिद्ध किया । स्वयं औरंगजेब एवं जामामस्जीदके तात्कालीन इमामको इस बातका अनुभव भी हुआ किन्तु शरीयतमें फंसे हुए वे जन आक्रोशके भयसे भी अपने दृढवादिताको छोड़ नहीं सके ।

छत्रशालकी प्राप्ति तथा हीरेका वरदान : महामतिने सोचा कि कट्टरपंथी लोग ज्ञानकी नहीं अपितु तलवारकी भाषा समझेंगे । अतः वे नैष्ठिक योद्धा क्षत्रिय वीरकी तलासमें आमेर, उदयपुर, औरंगाबाद, रामनगर, बुन्दी बुढानपुर आदिके राजाओंको धार्मिक सन्देश देते हुए बुन्देल केशरी छत्रसालको जागृत करनेके लिए वि. सं. १७४० में बुन्देलखण्डकी पावन भूमि पन्ना पहुंचे ।

छत्रसाल भी मुगलोंके साथ लोहा लेनेके लिए किसी समर्थ मार्ग-निर्देशककी प्रतीक्षामें थे । उन्हें कुछ वर्ष पूर्व ऐसा आभास भी हुआ था कि किसी दिव्य विभूतिके दर्शन होंगे । वह यही समय था । मऊके समीप महामति श्री प्राणनाथजीसे इनकी भेट हुई । पर्याप्त साधनके अभावमें छत्रसाल कुछ सोचते हुए भी नहीं कर पाते थे । महामति श्री प्राणनाथजीका दर्शन उनकी शारीरिक शक्ति एवं आत्मबल दोनोंके लिए वरदान सिद्ध हुआ । चिर प्रतीक्षित विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंकके रूपमें महामतिको पहिचान कर छत्रसालने उनेक चरणमें अपना सम्पूर्ण राज्य समर्पित कर शिष्यत्व स्वीकार किया । श्री महामतिने भी छत्रसालको राजतिलक देते

हुए महाराजकी पदवी दी और उनके साधनाभावको समझकर हीरामयी भूमिका वरदान दिया ।

मुगल शासनका अन्त : महामतिसे आशीर्वाद और प्रेरणा प्राप्त कर छत्रसालका उत्साह साहसके साथ बड़ने लगा। उन्होंने औरंगजेबकी सेनाओंके साथ अनेक बार युद्ध किया और विजयी बने । औरंगजेबको कभी–कभी आश्चर्य भी होता था कि एक छोटा सा राजा हमारे अतुल सैन्य बलको परास्त करता है । किन्तु उसे यह भी आभास हुआ था कि यह महामति श्री प्राणनाथजी '**आखिरी जमानेके खाविन्द**' की ही करामत है । अतः वह मूक दर्शक सा बना रहा ।

कहा जाता है कि औरंगजेब जब महामति श्री प्राणनाथजीके प्रति बुरी दृष्टि रखने लगा तभीसे वह दिल्लीकी तखतपर नहीं बैठ सका । वह राजधानीसे भागकर दक्षिणकी ओर गया । इस बीच उसके शाहजादेने छत्रसालके साथ युद्ध हेतु अपनी सेना भेजनी चाही उस समय औरंगजेबने पत्र लिखकर उसे समझाया, तुम कि ऐसा दुःसाहस न करो छत्रसालको '**इमाम मेंहेदी**' का साथ है तुम निष्फल रहोगे। औरंगजेब दक्षिणसे वापस नहीं आ सका । उसकी मृत्युका भी किसीको पता नहीं चला । दिल्लीकी तखत पर शाहजादा नहीं बैठ सका । इस प्रकार महामतिके प्रतापसे भारतमें सदाके लिए मुगल साम्राज्यका अन्त हुआ ।

धर्मपीठकी स्थापना तथा अन्तर्धान : छत्रसालने यावज्जीवन स्वयंको श्री प्राणनाथजीकी सेवामें लगाया । उनका राज्य निष्कलंक बन चुका था । हीरेका वरदान प्राप्त करनेपर धनधान्यकी भी कमी नहीं रही ।

महामति श्री प्राणनाथजीका आरम्भिक जीवन अपने सद्‌गुरु श्री देवचन्द्रजीके साथ जिसप्रकार श्री कृष्ण प्रणामी धर्मके आचार्यपीठ श्री ५ नवतनपुरी धाममें व्यतीत हुआ इसी तरह जीवनके अन्तिम दिनोमें भी उन्होंने छत्रसालसे विचार विमर्शकर पन्नाकी ऊंची टेकरी पर झंडा लहराया

और वहीं धर्मपीठ श्री ५ पद्मावतीपुरीकी स्थापना की उनके साथ आए सुन्दरसाथमेंसे गृहस्थोंको रहनेके लिए बंगलाजीके चारोंओर स्थान बनवाया यहींपर ज्ञानचर्चा करते हुए वि.सं. १७५१(१६९४ ई.)में उन्होंने अपनी इहलीला संवरणकर समाधी ली ।

मध्यकालीन भारतीय मनीषियोंमें महामति श्री प्राणनाथका अनूठा व्यक्तित्व रहा है। वे राजनैतिकक्षेत्रमें सफल राजनीतिज्ञके रूपमें छत्रसालका नेतृत्व करते थे। सामाजिक क्षेत्रमें अच्छे समाज सुधारक तथा मानवमूल्योंके संरक्षकके रूपमें उभरे एवं धार्मिक क्षेत्रमें एक क्रान्तदर्शी युगपुरुष रहे तो आध्यात्म क्षेत्रमें अक्षरातीत ब्रह्मके आवेशयुक्त होनेसे अपने अनुयायियोंके प्राणनाथ कहलाये । साहित्यकी दृष्टिसे देखें तो वे ऐसे मनीषि हैं जिन्होंने चौदह ग्रन्थोंसे संकलित १८७५८ चौपाई वाली तारतमसागर नामक ग्रन्थनिधि जगतको सौंपी

श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिका हिन्दी/गुजराती मासिकके सम्बन्धमें

विवरण : (फार्म ४ के नियम ८ के अनुसार)

प्रकाशन स्थान : श्री ५ नवतनपुरी धाम-खीजडा मन्दिर, जामनगर

प्रकाशनकी आवृत्ति : मासिक

सम्पादक : शास्त्री लक्ष्मण चैतन्य तथा श्री कनकराय व्यास

सम्पादक और मुद्रकका राष्ट्रीय सम्बन्ध : भारतीय

सम्पादक और मुद्रकका पता : श्री ५ नवतनपुरी धाम, जामनगर

प्रकाशक और मालिकका नाम : आचार्य श्री १०८ कृष्णमणिजी महाराज

राष्ट्रीयता : भारतीय

पता : श्री ५ नवतनपुरी धाम
खीजड़ा मन्दिर- जामनगर

मैं आचार्य कृष्णमणि महाराज एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

अन्ते आव्यो मनुष्य

ब्रह्मलीन आचार्य श्री १०८ धर्मदासजी महाराज

'लाख चौरासी भोगवी, अन्ते आव्यो मनुष्य'

महामति श्री प्राणनाथजी कहते हैं, यह जीव चौरासी लाख योनिमें रहकर जन्म-मरण(जरारूपी) दुःख भोगता हुआ परमात्माकी असीम कृपासे मनुष्य शरीर पाता है । मनुष्य शरीरका चरमलक्ष्य मुक्तिस्थानकी प्राप्ति करना है। देवदुर्लभ मनुष्य शरीर प्राप्तकर जिसकी वृत्ति मोक्षसुखोन्मुख नहीं होती वह जीवोंमें पामर है । क्योंकि स्वर्गस्थित देव अहर्निश मानव देहकी प्राप्तिके इच्छुक रहते हैं ।

चौदे लोक इच्छे आ वेला, जोगवाई तमे पाम्या जेह ।
अहर्निश कष्ट करे कै देवता, तोहे न आवे अवसर येह ॥

-श्री तारतम सागर

चौदह लोकके प्राणी जीवात्मा, जिसमें मोक्ष साधन भरपूर हैं, ऐसे इस शुभ अवसरकी इच्छा करते हैं । कारण कि मनुष्य शरीर संसार सागर तरनेका जहाज है । नाक-पृष्ठ-निवासी देवगण अनेक कष्ट भोगते हैं तथापि मनुष्य शरीररूपी साधन उन्हें दुर्लभ है । ऐसे अमूल्य शरीरको प्राप्त कर मोक्षसे विमुख होकर जो विषयमें पामर बना है वह मनुष्य आत्महा है । ईशावास्योपनिषद्में कहा है,

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
ताँऽस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

(ईशोपनिषद ३)

सम्पूर्ण योनियोंमें मनुष्य योनि ही श्रेष्ठ है । मानव देह परम दुर्लभ भी है । यह शरीर परमात्माकी कृपासे जन्म-मरणसे सदाके लिए छुटकारा पानेके लिए मिलता है । ऐसे शरीरको पाकर जो मनुष्य त्यागपूर्ण भावनासे

कर्मसमूहके नाशक परब्रह्म परमात्माकी आराधना नहीं करता, साधु समागमको छोड़कर कामोपभोगमें ही जीवन बिताता है, किसी भी प्रकार विषयोंकी तृप्तिकी इच्छा करता है वह मनुष्य आत्माकी हत्या करनेवाला है। क्योंकि इस प्रकार अपने जीवनका पतन कर केवल वृथा जीवन जीता है। इसका फल तो यह हुआ कि अपनेको प्रगाढ कर्मके बन्धनमें बाँधकर अनेक योनियोंका शिकार हो बार-बार जरा मरणका दुःख सहता है। इन काम-भोग-परायण लोगोंको चाहे वे कोई भी क्यों न हों, उन्हें चाहे संसारमें कितने ही विशाल नाम, वैभव या अधिकार प्राप्त हो, मरनेके बाद कर्मोंके फलस्वरूप बार-बार उन कूकर शूकर कीट पतङ्गादि विभिन्न शोक-संतापपूर्ण आसुरी योनियोंमें और भयानक नरकोंमें भटकना पड़ता है। इसी कारण श्रुतिने उसको आत्महत्यारा कहा है। श्रीमद् भागवतके दशमस्कन्धमें लिखा है,

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्योह्यात्मवञ्चकः ॥

हे परमकृपालु परमात्मा ! आपने इस जीव पर अत्यन्त कृपाकर मनुष्य शरीर दिया है। जो मनुष्य इस शरीरको पाकर भी अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं करता और शुद्ध भावपूर्वक आपके चरण-कमलोंका आश्रय नहीं लेता, उसका जीवन अत्यन्त शोचनीय है वह अपने आपको धोखा देनेवाला है।

परिणामको न शोचना ही आत्माकी वञ्चना है। जानो कि भावी जन्मकी बडेसे लेकर छोटे तकको फिकर नहीं हैं। महर्षिगणने आत्म सुखकी ओर ध्यान देनेका आदेश दिया है, जिसे समग्र विश्व आज भूल गया है। क्षणिक सुखके लिए करोडों, अरबों ही नहीं बल्कि अनन्त वर्षोंके सुखकी ओर ध्यान न देना इससे विशेष अधःपतन एवं शोचनीय स्थिति कौनसी हो सकती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है,

जो न तरे भवसागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृतनिंदक मन्दमति आत्महनन गति जाइ ॥

सभी प्रकारके साधनोंसे परिपूर्ण मानव देहको धारण कर जो परब्रह्मके अखण्ड धाममें जानेका कर्म नहीं करता अथवा तो इस संसारसे पार नहीं होता वह कृतनिंदक, मन्दमति मानव आत्महत्याकी गतिको प्राप्त होता है । आज मनुष्यकी जो परिस्थिति है, उसका श्री कृष्णने चित्रण किया है ।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहित्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥

चिन्तामपरिमेप्यां च प्रलयन्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ताः मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

अध्याय १६-१०-११-११-१२-१६

जिनका चौरासी लाख योनिका चक्कर पूरा नहीं हुआ है, ऐसे आसुरी सम्पत्तिवाले अधम जीव बलवत्तर चौरासीके प्रगाढ बन्धनको पुनः पुनः खरीदते हैं । क्योंकि वे दम्भ मान और अहंकारसे युक्त महान् कष्टसे भी पूर्ण न हो सकें ऐसे कामोंका ही आश्रय लेते हैं । अपवित्र व्रतोंको धारण करके निरन्तर अधर्म मार्गमें ही चलते हैं । आसुरी संपत्तिवाले जीव इन्द्रियजन्य सुखको परम पुरुषार्थ मानते हैं । इतना ही नहीं बल्कि विषय-भोगको ही श्रेष्ठ मानते हैं । इस प्रकारके निश्चयवाले पामर मनुष्य आजीवन चिंतामें मग्न रहते हैं । आशाओंके सैकडों बन्धनोंसे बंधे हुए और काम तथा क्रोधका आश्रय लेनेवाले इच्छाओंकी तृप्तिके लिए अन्यायपूर्ण अर्थ सञ्चय करते हैं ।

अनेक प्रकारके भौतिकवादमें चित्तको फिराते हुए, अपने लक्ष्यको

चुके हुए, मोहरूपी जालमें फंसे हुए, विषय भोगमें अत्यन्त आसक्त बने हुए कनिष्ठ श्रेणीके जीव अपवित्र नरकमें पड़ते हैं ।

'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्' के अनुसार अधम जीव चौरासी लाख योनिके चक्करसे नहीं छूट पाते । स्वामी श्री प्राणनाथजीने इस सम्बन्धमें कहा है,

अनेक बार तडफडी मरीने, दुःख देखी आव्यो छो पार ।
लाख चौरासी भमीने आव्या, आहीं मध्य देस वेपार ॥

-श्री तारतम सागर

अर्थात् चौरासी लाख बार तड़प-तड़पके तुम मरे, तब भी तुम्हें होश नहीं आया । अब तो तुम मानव अवतार, भरत खण्ड, कलियुग एवं सत्गुरुके समागममें आये हो, अब तो चेतो । चौरासी लाख योनिके दुःखको भोगकर चौरासीके किवाड़ मानव देहरूप नावमें बैठे हो । अत एव तुम्हें पार होना कठिन नहीं है । तुम्हारी मुक्ति तो स्वभाविक ही हो सकती है पर तुम अपने आपको सम्भालो, यही चौरासीके जन्म-मरण रूप चक्करमेंसे छूटनेका विशुद्ध उपाय है ।

उपरोक्त सम्बन्धकी पुष्टि करते हुए श्री मद्भागवतमें लिखा है,

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥

यह मनुष्य शरीर समस्त शुभ फलोंकी उपलब्धिका मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी अनायास सुलभ हुआ है । संसाररूप सागरसे पार जानेके लिए यह एक मजबूत नौका है । गुरुशरणके ग्रहण मात्रसे वे इसके केवट बनकर पतवारका सञ्चार करने लगते हैं और स्मरण मात्रसे ही मैं अनुकूल वायुके रूपमें इसे लक्ष्यकी ओर बढा देता हूं । हे प्रिय उद्धव ! मैं इतनी सुविधा प्राप्त होनेपर भी जो इस शरीरके द्वारा संसाररूप सागरसे पार नहीं हो जाता, वह स्वयं ही अपने अधःपतनका कारण बनता है ।

चौरासी लाख योनियोंके जीवकी गिनती भिन्न-भिन्न प्रकारसे बताई

गई है । किसीके मतसे मानव देह भी चौरासीके अन्तर्गत है । लिखा है,

बीस स्थिर नव वारिचर, रुद्र कीट दश पक्ष ।
तीस चतुष्पद चार नर, यह चौरासी लक्ष ॥

अन्य कतिपय सन्तोंके मतमें मनुष्य शरीर चौरासीसे बाहर हैं । लिखा है,

बीस लाख स्थावर जानौ, नौ लाख सब जलर मानौ ।
ग्यारह लाख कृमि कवि गाय, पक्षी गण दश लाख बताय ॥

तीन लाख पशु जानहु भाई, चार लाख बानर सुखदाई ।
जब यह चौरासी कटजाई, तब मनुष्यको तन कहुं पाई ॥

इसी सिद्धान्तको स्वामी श्री प्राणनाथजीने भी अपनाया है । आपने लिखा है '**लाख चौरासी भोगवी अन्ते आव्यो मनुष्य**' कहकर चौरासीसे बाहर मनुष्य योनिको माना है । कितने ही लोगोंके मतमें अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज इक्कीस-इक्कीस लाख योनियोंके हिसाबसे इन चारों खानोंका जोड़ करनेपर चौरासी लाख योनियाँ बनती है ।

सबसे.......

- **सबसे उत्तम-मनन चिन्तन करना । ● सबसे उत्तम दिन-आज ।**
- **सबसे उत्तम समय- अभी । ● सबसे बड़ा पाप-निन्दा करना ।**
- **सबसे बड़ी भूल-समयका अपव्यय ।**
- **सबसे बड़ी बाधा-अधिक बोलना ।**
- **सबसे बुरी भावना-ईर्ष्या ।**
- **सबसे भाग्यशाली-अपना कार्य स्वयं कर सके ।**
- **सबसे सरल कार्य-दूसरोंकी कमजोरियाँ निकालना ।**
- **सबसे बड़ा शिक्षक-जो हंमेशा जाननेका प्रयत्न करता हो ।**
- **सबसे बड़ा गुरु-जो सत्यासत्यकी पहिचान करा दे ।**
- **सबसे बड़ा अमीर-जिसने स्वयंको पहचान लिया ।**
- **सबसे बड़ा कंगाल-जिसने अपना उत्साह खो दिया ।**

वीतक-यात्रा

शास्त्री श्री लक्ष्मण चैतन्य-श्री ५ नवतनपुरी धाम

सुन्दरसाथजी, हमने गतांक पृष्ठ १४ से १९ पर्यन्त वीतके संक्षिप्त परिचयके साथ-साथ पातालसे अक्षरधाम पर्यन्तका आंशिक अवलोकन किया।

आइए, अब अक्षरसे भी परे जो सर्वातीत सच्चिदानन्द-स्वरूप परब्रह्म परमात्मा है उनके निज स्वरूप एवं सुदिव्य शोभासे परिपूर्ण स्वयंसिद्ध प्रकाश स्वरूप परब्रह्मधाम जिसे 'दिव्यब्रह्मपुर' परमधाम आदि नामों द्वारा शास्त्रोंने वर्णन है उसका किञ्चित दिग्दर्शन करते हुए वहाँकी चिन्मयता तथा चैतन्यताका चिन्तन एवं अवलम्बन कर चित्तवृत्तिको परम विश्रान्तिकी ओर उन्मुख करते हैं।

जब नहीं कछु पैदा हुआ, जिमी या आसमान।
और न कछु चौदे तबक, फिरस्ते दुनी जहान॥

तब चारों चीजको, किनहूं समारे।
ना कहूं चांद न सूरज, ना पैदा सितारे॥

- श्री तारतम सागर

जब कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ था। धरती आकाश नहीं थे, इस ब्रह्माण्डके चौदह लोकोंकी संरचना नहीं हुई थी। देवी देवतायें, फरिस्ते एवं जीव किसीका अस्तित्त्व नहीं था। तब चारों प्रकारकी वस्तुओं जल, वायु, पृथ्वी एवं आकाशका भी निर्माण नहीं हुआ था। अंडज, उद्भिज, स्वेदज एवं जरायुज आदि सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी। चाँद, सूर्य एवं सितारे आदिका भी कोई अस्तित्त्व नहीं था। न ही शून्य निराकार, निर्गुण निरंजनादि किसी स्थानका विस्तार था। उस समय क्या था ? कहते हैं, उस समय मात्र एक पूर्णब्रह्म परमात्माका अस्तित्त्व था। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं था। वे ही इस विश्व ब्रह्माण्डके हेतु हैं वे परमात्मा ही सभी कारणोंके भी कारण स्वरूप है। जिसको प्राप्त करना ही सभी चेतनाओंका

परम लक्ष है, जिनका आश्रय ही **'सर्वदु:ख विमोक्षणम्'** सभी प्रकारके दु:ख दर्दसे विमुक्त करने वाला है, तब ऐसे परम सत्य परमात्माका ही अस्तित्त्व था। ऐसे परम सत्य परमात्माको श्रीमद्भागवतमें श्री कृष्ण कहा है। यथा,

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्यादि हेतवे ।
तापत्रय विनाशाय श्री कृष्णाय वयं नुमः ॥

ऐसे परिपूर्णतम परमात्माके विषयमें उपनिषदमें कहा है,

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा पूर्णात्पूर्ण, परात्पर, सच्चिदानन्द स्वरूप अनन्ताद्वैत, सदा सर्वदा चेतन, दिव्य प्रकाशपुंज, अनन्त-धर्मावच्छिन्न, एकरस, सर्वोत्कृष्ट, सर्वाध्यक्ष, सर्वाश्रय, स्वयंसिद्ध निरपेक्ष विराजमान हैं। इसी प्रकार परमात्माका परमधाम भी सदा सर्वदा एकरस एवं दिव्य शोभासे परिपूर्ण, नित्यचेतन, सनातन सामग्री संपन्न सर्वप्रकारके आनन्दोंसे भरपूर चिद्घन स्वरूपमें अवस्थित है अतएव यहाँपर किसी प्रकारके विकार नहीं है।

परमात्मा परं ज्योति परंधाम परागति ।
सर्ववेदान्तसारोऽहं सर्वशास्त्रसुनिश्चितम् ॥
एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्मनित्यं सनातनम् ॥

इस प्रकार सभी शास्त्रोंमें सृष्टि पूर्व वही एक अद्वितीय सनातन ब्रह्मकी सत्ता होनेकी बात कही है। दिव्य परमधाम अपने आपमें परिपूर्ण है। यहाँ पर बाह्य प्रकाश एवं बाह्यानन्दकी कोई आवश्यकता नहीं है। परमात्माको एवं उनके धाम परमधामको प्रकाशमय कहकर शास्त्रोंने वर्णन किया है। यहाँके समग्र सामग्री नूर, प्रकाशमय हैं। इस ब्रह्मधाम नश्वर विश्वकी भाँति शशी, सूर्य, तारागण आदि पार्थिव पदार्थसे प्रकाशित नहीं है किन्तु यहाँकी सभी वस्तुयें ब्रह्मस्वरूप ही हैं, यथा,

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

(मुण्डकोपनिषद्)

यहाँकी एक एक वस्तुयें पूर्णब्रह्म परमात्माकी चेतनतासे आच्छादित होनेसे वे सभी परिपूर्ण हैं । यहाँ कोई किसीसे न्यून नहीं हैं । परमधाम सत्, चिद्, आनन्द, अनन्त और अद्वैत इन पाँच भावोंसे परिपूर्ण होनेके कारण यहाँके सर्व सामाग्री चेतनमय एवं सर्वकाल ब्रह्मानन्द लीलारसमें निमग्न हैं । कहते हैं परमधामकी एक -एक लता, वेली व वृक्षमें सभी प्रकारके फल, फूल एवं सुगन्ध विद्यमान हैं । यहाँ सदाकाल सर्वऋतु वर्तमान हैं, यहाँ पर नश्वर जगतकी भांति ऋतु परिवर्तन नहीं होती है । इसीलिए महामतिजीने कहा है,

ऋतु से लीला न लगी, लीला से ऋतु जान ।
जब जैसी लीला जहाँ, तैसी ऋतु परवान ॥

-श्री तारतम सागर

अर्थात् परमधाममें परमात्माकी लीलानुरूप ऋतु परिवर्तन हुआ करती है न कि ऋतु अनुरूप लीला । यथार्थमें जिस ब्रह्मधामके एक परमाणुके समक्ष इस विश्वके करोड़ों सूर्योंका प्रकाश निस्तेज हो जाता है, जहाँके एक रज कणकी शोभा यहाँके स्वर्ग वैकुण्ठके करोडों सौन्दर्य नहीं पा सकते । जिस ब्रह्मानन्दके क्षणमात्रके आनन्दके समक्ष, स्वर्ग वैकुण्ठके असंख्य आनन्द, सुख एकत्रित किया जाये तो भी तुच्छ प्रतीत होता है । ऐसी दिव्य चेतनतासे परिपूर्ण तथा असीम परमधामके सन्दर्भमें जहाँ श्रुति स्मृति भी पूर्णरूपेण वर्णन न कर पानेसे मौन रहा करती है, **'यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह'** जहाँ मन और वाणीकी पहुँच नहीं है, वहाँका वर्णन कौन और कैसे कर सकता है ? फिर भी **'वेसुमार लाये सुमारमें, सो भी साथ कारण'** कहकर सुन्दरसाथको वहाँकी दिव्यताकी एक झलक बतानेके लिए महामति श्री प्राणनाथजी श्री तारतम सागरमें कहते हैं,

सब एक जवेर का अरस है, तामें कै तरंग उठत ।
जुदे जुदे रंगों झरोखे, अनेक भाँत झलकत ॥
जित जैसा रंग चाहिए, तित तैसा ही देखत ।
ना समारे नए किन, न पुराने पेखत ॥
बन सबे एक रस है, कै रंग वृक्ष अनेक ।
रंग रस स्वाद जुदे जुदे, कहाँ लों कहूँ विवेक ॥
एक जिमी जरेकी रोसनी, मावत नहीं आकास ।
तिन जिमीके जवेरको, क्यों कर कहूँ प्रकास ॥
घास करत है सेजदा, करें सेजदा दरखत ।
तो क्यों न करें चेतन, यों फुरमान फुरमावत ॥
पार न जिमि अरसको, पार न पसु जानवर ।
पार नहीं वृक्ष बागको, पार ना पहाड सागर ॥
सब सुख एक चीजमें, सबकी सिफतको नाहीं पार ।
अरस पहाड़ या तिनका, सब देखे ही पाइए बेसुमार ॥

श्री तारतम सागर

अर्थात् सम्पूर्ण (पच्चीस पक्ष) परमधाम एक ही दिव्य रत्नका है । उससे अनेक रंगोंकी असंख्य तरङ्गें उठती हैं । अलग अलग झरोखोंसे निकलते हुए विभिन्न प्रकारके रङ्ग विविध रूपोंमें चमकते हैं । जहाँ जैसा रंग होना चाहिए वहाँ पर उसीके अनुरूप रङ्ग विद्यमान है । वहाँ पर न कोई वस्तु नई होती है न ही कोई पुरानी होती है । परमधामके वनोपवनमें विभिन्न जातिके अनकों वृक्ष हैं । उनके फल भी भिन्न भिन्न प्रकारके रङ्ग एवं स्वादके हैं फिर भी वन एक रस ही दिखाई देता है । इस दिव्य भूमिके एक कणका प्रकाश भी जब सम्पूर्ण आकाशमें समाता नहीं है तो वहाँके रत्नोंके दिव्य प्रकाशके सन्दर्भमें तो कौन कैसे वर्णन कर सकता है । परमधामकी चेतनताकी तो बात ही क्या करें, जब परमधामके घास तथा वृक्षादि भी धामधनीको सेजदा(प्रणाम) करते हैं तो फिर चेतन पशुपक्षियोंकी तो बात ही निराली है ।

महामति श्री प्राणनाथजी कहते हैं परमात्मा एवं परमधाम प्रेमका ही दूसरा नाम है **'प्रेम ब्रह्म दोउ एक है'**। वहाँ प्रेमसे भिन्न कुछ भी नहीं है। हर चीज प्रेमसे परिपूर्ण है। वहाँकी जड़ कही जानेवाली वस्तुयें एवं पशु पक्षियाँ भी धामधनीके प्रेमसे सराबोर होते हैं। यथा,

एक इसक धनी बिना, और कछू जानत नाहिं ।
खेलें बोलें गाए लरें, सो सब इसक माहिं ॥

ताथें अंबार इसक कै, इन जिमी सब जान ।
हक का कायम वतन, सब अंग इसक पेहेचान ॥

एक जरा जो इन जिमी का, सो सब इस्कै की सूरत ।
आसमान जिमी जड़ चेतन, पेहेचान इस्क दोऊ इत ॥

यों अरस सारा इसक में, एक जरा न जुदा होय ।
खावंद सबों पिलावहीं, क्यों कहिए इसक बिन कोए ॥

अर्थात् परमधामकी भूमिमें सर्वत्र प्रेम ही प्रेमका प्रकाश है। धामधनीके अखण्ड परमधामके प्राणियोंके अंग प्रत्यङ्गमें प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है। इस दिव्य भूमिका एक कण भी प्रेमका ही स्वरूप है। यहाँ पर आकाश भूमि तथा चल-अचल सभीमें अपार प्रेमकी झलक दिखती है। इसप्रकार परमधामकी समग्र भूमि प्रेममय है। यहाँकी कोई भी वस्तु धामधनी श्री राजजीके प्रेमसे पृथक नहीं है क्योंकि स्वयं धामधनी सभीको प्रेमामृतका सिञ्चन करते रहते हैं। अतः यहाँ पर प्रेमसे पृथक् कुछ भी नहीं है।

सुन्दरसाथजी, ऐसे देदिप्यमान एवं प्रेमसे परिपूर्ण परमधाम २५ भागोंमें विभक्त हैं। इसीलिए परमधामको २५ पक्ष परमधाम भी कहा जाता है।

धाम तलाव कुंजवन सोहे, मानिक नहेरें वनकी जोए ।
पश्चिम चौगान बड़ो बन कहिए, पुखराज जमुनाजी लहिए ॥
आठ सागर आठ जिमीके, पच्चीस पक्ष धाम धनीके ।

-श्री तारतम सागर

अर्थात् **धाम (अक्षर धाम औन निजधाम (रंगमहल) हौजकोसर तालाव, कुंजनिकुंजवन, माणिक्यगिरि, पुष्पराजगिरि, श्री यमुनाजी, पश्चिम चौगान, जवेरातोंकी नहेरें, महावन, नूर सागर, नीरसागर, दुग्धसागर, दधिसागर, घृतसागर, मधुसागर, रससागर, सर्वरससागर** तथा आठ सागरोंके मध्यके आठ सुन्दर एवं दिव्य भूमियाँ । इस प्रकार परमधाम २५ पक्षमें विभक्त हैं । यहाँकी भूमियाँ महल मन्दिर बाग बगींचे वन उपवन नदी नाले फल फूल मेवा मिठाई सहित यावत पदार्ध सच्चिदानन्दमय सर्व सम्पत्तियोंसे सदा सर्वदा भरपूर हैं । भगावन शिवजी माता पार्तवतीको समझाते हुए कहते हैं,

आनन्दरूपा सामग्री नित्य खण्डाहि वर्तते ।
न माया गुण संसर्गः कदाचित् प्रिये ॥

अर्थात् परमधामके सम्पूर्ण पदार्थ आनन्दस्वरूप नित्य व अखण्ड हैं । वहाँ पर बनी हुई पंचभूतात्मक सामग्री भी मायिक गुणोंसे रहित चेतनतासे ओतप्रोत एवं दिव्य है ।

पच्चीस पक्षमें विभाजित परमधामके केन्द्रमें परम दिव्य घनीभूत शृंगाररसरूपी रङ्गमहल है जिसको मूलमन्दिर भी कहते हैं । **'मध्यखण्डे महादिव्यं मूल मन्दिरमद्भुतम्'** । यह मन्दिर नवभूम्यात्मक है । नव भोम एवं दशमी आकाशी युक्त रङ्गमहलके प्रथम भोममें **मूलमिलावा**की दिव्य शोभा है । यह प्रथम भोम होनेसे शास्त्रमें इसे **आधारशीला** कहा है । द्वितीय भोममें **भूलभूलवनी**की शोभाया है जिसे **मतिविभ्रमा** कहा है । तृतीय भोमको **भोगभूमि** कहा है । चतुर्थ भूमिको **नृत्यशाला नृत्यभूमि**, पाँचवी भोमको **शयनीयभूमि**, छठ्ठी भोमको शिविका **(विमानोंकी)** भूमि, सातवीं एवं आठवीं भोमको **दौला (हिन्डोला)**की भूमि, नवमी भोमको (दूरलक्षा) **दूरदर्शीभूमि** एवं दसवीं भोमको **आकाशी (चन्द्रशाला) भूमि** कहा जाता है ।

इस दिव्य परमधाममें सच्चिदानन्दस्वरूप श्री राजजी(श्री कृष्ण)

अपनी अर्धाङ्गिनी शक्ति श्री श्यामा(श्रीराधा)जी एवं द्वादश सहस्र अंगनाओंके साथ दिव्य प्रेम लीलामें निमग्न रहते हैं । उनके विषयमें ब्रह्मवैवर्त पुराणमें कहा है,

चिदादित्यं किशोराङ्गं परे धाम्निविराजितम् ।
स्वरूपं सच्चिदानन्दं निर्विकारं सनातनम् ॥

अर्थात् परमधाममें विराजमान चिद्घन, तेजराशि, सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा किशोराङ्ग एवं निर्विकार हैं । ब्रह्म तथा ब्रह्मधाम सनातन तथा सदासर्वदा एकरस नित्य अविनाशी होनेसे वहाँ कभी जरा, व्याधि, जन्म एवं मृत्यु आदिका कोई भय नहीं है । **'आत्मानं धीरमजरं युवानम्'** वेदमें भी परब्रह्म परात्माको अमर, धीर एवं युवावस्था बताया है । ऐसे सर्वगुण एवं सर्वैश्वर्य संपन्न परमात्मा अक्षरातीत श्री कृष्ण अपनी अंगनाओंके साथ सदा सर्वदा दिव्यातिदिव्य प्रेमलीला कर सभी अंगनाओंको आनन्दित किया करते हैं । इसमें भी रंगहलके अन्दर होनेवाली ब्रह्मलीला एवं अन्तरङ्ग लीला तो और भी महत्त्वपूर्ण है । जिसको स्वयं श्री राजजी महाराज एवं उनके अंगनाओंके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जान सकता है । और की तो बात ही क्या है स्वयं श्रीराजजीके सत्अंग स्वरूप अक्षर ब्रह्म भी उस दिव्य लीलाको नहीं जान सकते । यथा,

अक्षरातीतके महलमें, प्रेम इसक बरतत ।
सो सुध अक्षरको नहीं, किन विध केल करत ॥

-श्री तारतम सागर

सुन्दरसाथजी, जिस लीलाको स्वयं अक्षर ब्रह्म भी नहीं जानते ऐसी लीलामें ही नित्यनिरन्तर डूबे रहनेवाली ब्रह्मआत्मायें इस नश्वर जगतमें कैसे और क्यों आई ? वहाँपर ऐसी क्या घटना घटित हुई ? इस नश्वर जगदोत्पत्तिका महाकारण क्या है ? सभी आगामी अंकमें......

॥ प्रणाम ॥

माया एवं जागनी

पद्मा शर्मा-कालचीनी (पं.बं)

हवे पहेला मोहलजलनी कहूं बात, ते तां दुखरूपी दिन रात ।
दावानल बले कै भाँत, तेनी केटली कहूँ विख्यात ।।

महामति श्री प्राणनाथजी श्री रास ग्रन्थके प्रथम प्रकरणमें मोहजलके विषयमें समझाते हुए कहते हैं, इस नश्वर संसारमें मायाका ही प्रभुत्त्व है । कहते हैं मा-नहीं, या-जो, मतलब जो नहीं है, जिसका कोई अस्तित्त्व नहीं है फिर भी चारों ओर दिखरहा है वह ही माया है । इस मायाने पूरे जगतको अपने वशमें किया है । इसका विस्तार अपार है । प्रत्येक प्राणीको मायाने प्रभावित किया है । महामति श्री प्राणनाथजी कहते हैं कि मायाके प्रभावसे मैं भी प्रभावित हो गया,

बांहें ग्रही लई नीसरी, मैं त्रण जुध किधां फरी फरी ।
पछे गत मत मारी हरी, लई बस पोताने करी ।।

कहते हैं इस मायाके साथ मैंने अनेक बार युद्ध किये । मुझे भी इससे पार पाना कठिन हुआ । किन्तु मेरे सद्गुरुने मुझे इससे पार उतारा । अन्यथा इस मायाके फंदेसे छुटना सरल नहीं था । क्योंकि इसके अनेक हथियार हैं जिनके सहायतासे माया सभी अपने बशमें करती है ।

एहना आउध अमृत रूप रस, छल बल वल अकल ।
अगिन कुटिल कोमल, चंचल चतुर चपल ।।

अर्थात् मायाके मिठी अमृततुल्य बोली, लुभावना स्वरूप, चंचलता, कोमलता, चतुर, होशियार, छल, बल, दावपेच, बुद्धि, क्रोध, कुटनीति, आदि प्रमुख हथियार हैं जिनके द्वारा माया उसके आसपास आनेवाले मनुष्यको अपने जालमें फंसा लेती है । साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या करें इस मायाने बड़े बड़े योगी, तपस्वी एवं ज्ञानी लोगोंकों भी अपने वशमें किया । यह इतनी शक्तिशाली एवं प्रभावशाली है । महामति श्री प्राणनाथजी कहते हैं,

ए माया छे अति बलवन्ती, उपनी छे मूल धनी थकी ।

इस शक्तिशालीनी मायाकी उत्पत्ति भी स्वयं धामधनीने की है । अतः यह माया अतीव प्रभावशाली है । अब आइये, यह समझें कि स्वयं श्री राजजी महाराजने इस मायाको क्यों निर्मित किया ? यह तो ब्रह्मात्माओंको दिखानेके लिए है ।

सच्चिदानन्दमय, एवं पूर्णात्पूर्ण ब्रह्मधाममें श्री राजजी, श्यामाजी एवं ब्रह्मात्माएं नित्य निवास करते हैं, वहाँ रहते हुए ब्रह्मात्माओंने कभी मायाजन्य खेलकी परिकल्पना भी नहीं की थी । क्योंकि परमधाम प्रेमका सागर है वहाँ मायाका प्रवेश भी नहीं है । ब्रह्मात्माओंको माया क्या है ? दुःख क्या है ? इसकी जानकारी नहीं थी । अतः श्री राजजी महाराजने उन्हें मायाजन्य खेल दिखान चाहा । आज पर्यन्त ब्रह्मात्मायें अपने धनीसे मात्र प्रेममय लीला करती थीं । सदा प्रेममेंही ओतप्रोत रहनेके कारण ब्रह्मात्माओंको प्रेम भी क्या वस्तु है यह जानकारी नहीं थी । अतः श्री राजजी महाराजने प्रेमकी परिपूर्णताको समझानेके लिए मायावी खेल दिखाना योग्य समझकर इसकी उत्पत्ति की ।

श्री राजजी महाराजने ऐसा वातावरण निर्माण किया कि अचानक सखीयाँ प्रेम संवादके लिए तत्पर हुईं । सखीयाँ कहती हैं, हे धनी ! हम आपको अपार प्रेम करते हैं मगर आप हमें इतना प्रेम नहीं करते जितना हम आपको करते हैं । यह क्यों ? श्री राजजी महाराज कहने लगे, सखियों ! ऐसा कुछ नहीं है ? वस्तुतः प्रेम तो मैं तुम सभीको अधिक करता हूँ किन्तु तुम्हें इसकी जानकारी नहीं है । इस प्रकार सखियाँ धनीके साथ संवाद करने लगी ।

अन्ततः श्री राजजी महाराजने प्रेमकी परिभाषा, महत्त्व समझानेके लिए ही सखियोंको मायावी जगतमें भेजनेका निर्णय करके मायाको निर्माण किया । उन्होंने सखियोंको मायाका ऐसा आकर्षण बताया कि वे अब मायावी खेल देखनेकी जिद्द करने लगी । श्री राजजी महाराजने अनेक प्रकारसे रोकनेका प्रयास किया किन्तु बाल हठकी तरह सखियाँ हठ करने लगीं । श्रीराजजी महाराजने कहा, देखो तुम लोग मायामें जाओगे तो अपने

घर परमधाम, मुझे तो भूलोगी ही इसके साथ-साथ अपने आपको भी भूल जाओगे अतः जिद्द मत करो। किन्तु सखियाँ मानी नहीं और कहने लगी,

सौ बेर देखो अजमायके, मोमिन भूले न कोई ॥

और एक आपसमें कहने लगी हे सखियों, हमारे धनीने हमें डर दिखाया है। अतः हमें इस बातको ख्यान रखनी चाहिए। हम कदाच भूल जायें तो हमारा कर्तव्य होगा की हम एक दूसरेको जगायें,

मैं भूलुं तो तूँ मुझे, पलमें दीजो बताय ।
तूँ भूले तो मैं तुझे तरत देऊं जगाय ॥

इस प्रकार वायदा कर सखियाँ मायाका खेल देखनेके लिए सुरता रूपसे संसारमें आई। श्री राजजी महाराज भी देख रहें हैं कि देखूं तो सही इस वायदेको निभानेके लिए मेरी सखियाँ, मेरी लाडलियाँ कहाँ तक सफल होती है ?

सुन्दरसाथजी, हम सभी इस वायदेके साथ आये थे। अब हमें यह विचार करना चाहिए कि हम उस वादेको निभा रहे हैं या नहीं। हम खुद जग गयें हैं या नहीं ? जगें हैं तो हम दूसरेको जगानेका कार्य कर रहें हैं कि नहीं ? वस्तुतः जो जग जाता है उसके क्रिया कलाप-आचार विचार ऐसे होते हैं कि उसके संगमें आनेवाले अपने आप जग जाते हैं। स्वयं जगनेके पश्चात् उसके दिलमें यही बात आती है कि अरे देखो दुनियाँमें आकर ब्रह्मात्माएँ कैसे भूल गई हैं। मैं इनको जागृत करूं यही मनमें अभिलाषा होती है।

जब निजानन्दाचार्य सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराजके अन्दर पूर्णब्रह्म परमात्मा श्री कृष्णजी स्वयं आकर विराजमान होते हैं तब सद्गुरुके मन-मस्तिस्कमें विद्यमान सारी समस्यायें दूर हो जाती हैं। सद्गुरुको स्वयं एवं परमधामका पूर्ण पहिचान हो जाती है। श्री कृष्णजी द्वारा प्रदत्त श्री तारतम ज्ञानके द्वारा जैसे ही सद्गुरुने अखण्ड द्वार खोला तो उन्हें परमधामका साक्षात् दर्शन होने लगा। धामधनी एवं अपने आपकी पूर्ण पहिचान हो

गई । जैसे ही उन्हें ऐसी अनमोल सम्पत्ति मिल गई..उनका मन उमड़ने लगा अरे....इस ज्ञानको मैं किससे बाटूं, किसको दूँ। ऐसा बार बार विचार करने लगे । अन्ततः जैसे चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकर्षण करता है उसी तरह सद्‌गुरुके अन्दर विद्यमान ब्रह्मज्ञानने एक सुयोग्य पात्रको आकर्षण किया । वह है गांगजीभाई ,

गांगजी भाई मिले इन अवसर, तिन ये वाणी लई चित्त धर ।

सद्‌गुरुने सर्वप्रथम इस अखण्ड ज्ञानका वितरण करना गांगजीभाईके द्वारा प्रारम्भ किया । गांगजी भाई भी ऐसी निधीको प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए। सद्‌गुरुने उन्हें सारी बात कहकर संसार सागरमें डूबी हुई ब्रह्मात्माओंको जगानेकी बात कही । किन्तु गांगजी भाईके अन्दर थोड़ी सी शंका हुई,

तब गांगजी भाई पायो अचरज मन, कौन मानसी पारके वचन ।
कह्या ब्रह्म सृष्टि क्यों मिलसी, चाल तुम्हारी क्यों चलसी ॥

अर्थात गांगजीभाई कहने लगे, हे गुरुदेव बात आपकी योग्य है किन्तु इतने सारगर्भित बातको कौन विश्वास करेगा । और परमधामसे आयी हुई सखियाँ कौन कौनसी हैं। उन्हें कैसे पहचाना जाय एवं वे कैसे इस ज्ञानको लेने आयेंगी ? आपको बतया मार्ग कोई सरल मार्ग नहीं है तो उसमें वे कैसे चल पायेंगे ? । क्योंकि यह संसार सागर कोई साधारण नहीं है, मायाका जोर अति तीव्र है,

मोहजल पूर तिखा अति जोर, नख अंगुरी ले जाए तोर ।
तरंग बड़े मेर से होय, इत खड़ा न रहने पावे कोय ॥

हे गुरुदेव ! मायाके सागरमें पहाड़ोंकी तरह बड़े बड़े तरंग हैं, लहरें विशाल हैं तेज तर्रार धार हैं तो इसमें जरासी भी चुक हुई तो अच्छ अच्छे डूब जाते हैं । यहाँ कोई स्थिर नहीं रह सकता । इस मायाने ऐसा परदा किया है जिसमें कोई कुछ नहीं कर सकता। सभी अन्धेकी तरह भटक रहे हैं । महामति श्री प्राणनाथजी कहते हैं,

हाथ न सुझे सिर न पाये, इन अंधेरी से निकस्यो न जाये ।
चढ्यो मायाको जोर अमल, भूलिया आप माँहे घर छल ।

ना सुध धनी ना मूल अकल, इन मोहजल को ऐसो बल ॥

हे गुरुदेव और तो और स्वयं ब्रह्मात्मायें भी इसी मायामें डुबी हुई हैं मायाका जहर उनके ऊपर चढा हुआ है तो कैसे उस जहरको दूर कर सकते हैं ? बताईए ।

तब सद्‌गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराज कहते हैं, हे गांगजीभाई तुम चिन्ता न करो । क्योंकि इनको जागृत करनेके लिए हमारा धाम धनी स्वयं उपाय करेंगे । तुम देखते जाओ धनीका कैसा चमत्कार होगा ।

बाहरी दृष्टिको रोशन कराने, धनी खुद आयेंगे ।
प्रत्यक्ष दरशन देकर, अपने होनेका प्रमाण देंगे ॥

अनेक प्रकारकी लीलायें कर धनी उन सभीको अपने आप बुलायेंगे । सभी करने वाले हमारे धनी होगें मात्र निमित्त हमें बनना है । फिर तो क्या था सुन्दरसाथके आगे श्री राजजी महाराज स्वयं अनेक लीला करने लगे । (आडिका) चमत्कार द्वारा सारे लोगोंको एकत्रित कर फिर ब्रह्मज्ञानका प्रकाश दिया जाने लगा । स्वयं श्री राजजी महाराज अनेक प्रकारसे विविध माध्यमसे ब्रह्मात्माओंको सद्‌गुरुके समक्ष भेजने लगे । सद्‌गुरु उन्हे बड़े प्रेम-भावसे समझाकर ब्रह्मज्ञान प्रदान करने लगे । इस तरहसे जागनीका कार्य प्रारंम्भ हुआ ।

सुन्दरसाथजी, सद्‌गुरुने जीवनके चालीस चालीस वर्ष पर्यन्त तपस्या एवं साधना करके जिस ब्रह्मज्ञान, तारतमज्ञानको प्राप्त किया । वह ज्ञान हमें न कोई तपस्या, न कोई साधना बस यूं ही सद्‌गुरु कृपासे सहजसे प्राप्त हुआ है । हम धन्यभागी हैं कि हमें सद्‌गुरुका अनुग्रह प्राप्त हुआ । किन्तु हम धन्यभागी हैं कहकर यूं ही हाथ पर हाथ धरे बैठनेसे कुछ नहीं होगा हमें उस वादेको याद करते रहना चाहिए,

मैं भूलुं तो तूं मुझे, पलमें दिजो बताय ।
तूँ भूले तो मैं तुझे तुरन्त देऊं जगाय ॥

परमधाममें श्री राजजी महाराजके साथ किये इस वादेको प्रतिक्षण स्मृति बनानी चाहिए । यदि हम जाग गये हों तो इस परम पावनी

ब्रह्मज्ञानकी धारामें औरको भी ला-लाकर पान, आचमन एवं अवगाहन करवायें तो ही हमारी पूर्णतः जागनी हुई कह सकते हैं। तब ही हम सच्चे सुन्दरसाथ कहलायेंगे।

दृष्टान्त दर्पण

हिसाब प्रभुका : *एक ग्रामीण नारियलके पेड़ पर चढ़कर उसका फल तोड़ रहा था। वह पेड़की चोटी पर पहुँचा तो नीचे जमीनकी तरफ देखकर उसे चक्कर आ गया। घबराकर वह जोर-जोरसे रोते हुए भगवानसे बोलने लगा, 'प्रभु मैं उतर रहा हूँ। सही सलामत उतार दो तो एक सौ रुपयेका प्रसाद आपको चढ़ाऊंगा। यह बोलकर वह धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। चौथाई दूरी पार करते ही उसमें थोड़ा साहस आ गया। वह मन ही मन सोचने लगा कि इतनी कम दूरीके लिए एक सौ रुपये कुछ ज्यादा है। मैं दिनभर महेनत कर सौ रुपये कमाता हूँ-सभी कैसे खर्च करूं? भगवानको पैसाका मोह थोडे ही है इसीलिए भगवानको मैं इक्यावन रुपयेमें मना लूंगा। यह सोचकर फिरसे इक्यावन रुपयेका संकल्प किया। वह धीरे धीरे थोडा और नीचे उतर गया। अब तो वह आधा उतर चुका था। फिरसे उसका मन बदल गया और सोचने लगा अरे...भगवानको मुझपे प्रेम तो है इसीलिए तो मुझे सलामत उतार रहे हैं। वह तो मुझसे प्रेम करते हैं पैसेसे थोड़े ही करते हैं। यह सोचकर उसने फिर कहा प्रभु, मैं थोड़ा गरीब हूँ इसीलिए आपको २५ रुपयेकी मिठाई चढाऊंगा। यह कहते हुए वह और नीचे उतर गया। उसको लगा की भगवानको तो कितने लोग मिठाई अर्पण करते हैं सब थोड़े ही खाते हैं इसीलिए २५ रुपयेकी मिठाई भी तो ज्यादा ही है। अतः भगवान मैं आपको ११ रुपयेकी मिठाई चढाऊंगा मुझे सलामत नीचे उतार दो।*

अब वह ग्रामीण विलकुल जमीनके पास पहुँच चुका था। तब उसकी बुद्धि फिर डोल गई, सोचने लगा अरे अरे... अगर मैं पहले ही सवा रुपया बोल देता तो क्या प्रभु मुझे बीचमेंसे ही गिरा देते' नही नही ऐसा नही होता इस प्रकारसे वह सोच ही रहा था उसके हाथोंसे

पेड़ छूट गया और वह धड़ामसे जमीन पर आ गिरा और चोट खा बैठा । आस पासके लोग उसे डॉक्टरके पास ले गये । डॉक्टरने मरहम पट्टी करदी, खानेके लिए दवा दी । उसके इलाज पर पूरे सौ रुपयेका खर्चा आ गया ।

संतोष ही श्रेष्ठ धन है : *एक गरीब था, वह खूब मेहनत करके अपने परिवारका भरणपोषण करता था । धर्माटन करते करते किसी एक दिन उस गरीबकी झोपड़ीमें कोई महात्मा पहुँच गये । उसने महात्माकी यथासम्भव सेवा सत्कार किया । महात्मा प्रसन्न होकर जाते जाते उसे एक मंत्र देते हुए कहा, यह मंत्रका तुम प्रतिदिन प्रेमसे जाप करना । वह गरीब बड़े भावसे उस मंत्रका जाप करने लगा, उसे तो यह भी पता नही था की मंत्र किसका है । बस सन्तपर विस्वास कर मंत्र जपने लगा । कै दिन पश्चात् मंत्र जपते जपते उसके समक्ष लक्ष्मीजी प्रकट होकर बोली, मैं प्रसन्न हूँ । बोलो क्या चाहते हो ? गरीब हडबड़ा गया कुछ बोल नही पाया क्या मागूँ । उसने कहा मैं कल आपसे मांगूँगा । लक्ष्मीने कहा ठीक है ।*

गरीब सोचने लगा कि क्या मांगू ? अच्छा तो रहनेके लिए आलीशान मकान मागूंगा । फिर सोचता है मात्र घर ही क्यों ? जमीन नही होगा तो खायेंगे क्या ? अच्छा जमीन मांग लूंगा । क्योंकि जमीदार देखो न गाँवमें कितना धाक जमाये बैठते हैं । फिर उसने सोचा अरे जमीनदार भी तो राजाको कर देते हैं राजाके सामने जमीदार कुछ नही है । इसीलिए मैं तो राजाकी मांग करुंगा । अरे नही नही..इस प्रकार सोच-विचारमें ही सारी रात बीत गई और कुछ तय नही कर पाया । प्रातः हुआ तो लक्ष्मीजी पुनः प्रकट हुई कहा अब बोलो क्या चाहिए ? गरीब बोला, मां मुझे सिर्फ भगवान्की भक्ति और संतोष धन दिजीए । देवीने पूछा, तुम गरीब हो दौलत लेलो आरामसे जीवन जिओ । गरीबका उत्तर था, मां दौलतकी आशासे ही तो आज मेरी नीद हराम हो गई, न जाने दौलत आनेके बाद क्या होगा । इसीलिए मुझे यह सब कुछ नही चाहिए बस मुझे एक संतोष धन दीजिए मैं उसीमें चैनकी नीद ले सकूँगा । देवी स्नेहसे उसे आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गई ।

चौदह रत्न

चौदह लोक : पाताल, रसातल, महातल, तलातल, सूतल, वितल, अतल भूर्लोक, भूवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक ।

श्री तारतम सागरमें समाहित चौदह ग्रन्थ : रास, प्रकाश, षटऋतु, कलश, सनन्ध, किरन्तन, खुलासा, खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिनगार, सिंधी, मारफत और क्यामतनामा ।

चौदह देवतायें : दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम, प्रजापति, चन्द्रमा, वृहस्पति, ब्रह्मा, वासुदेव और रुद्र ।

समुद्र मंथनसे निकले चौदह रत्न : लक्ष्मी, रम्भा, विष, सुरा, अमृत, शंख, ऐरावत हाथी, धन्वन्तरि वैद्य, पारिजात, कामधेनु, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, कौस्तुभमणि, उच्चैःश्रवा घोड़ा ।

चौदह मनुके नाम : स्वयंभू मनु, स्वरोचितमनु, औतममनु, तामसमनु, रौवतमनु, चाक्षुषमनु, वैवस्वतमनु, सावर्णीमनु, दक्ष सावर्णी मनु, ब्रह्म सावर्णी मनु, धर्म सावर्णी मनु, रुद्र श्रावर्णी मनु, देवश्रावर्णी मनु और इद्रश्रावर्णी मनु ।

चौदह विद्यायें : चार वेद, छ वेदांग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण,

इसके उपरान्त श्री कृष्ण प्रणामी धर्ममें चौदहका विशेष महत्त्व है,

- सद्‌गुरु श्री देवचन्द्रजी महाराजका प्रागट्य एवं धामगमन तिथि चतुर्दशी हैं।
- सद्‌गुरु श्री देवचन्द्रजीने चौदहवर्ष पर्यन्त श्रीमद्‌भागवत कथा सुनी थी।
- महामति श्री प्राणनाथजीकी प्रागट्य तिथि भी चतुर्दशी है।

संकलन- श्री योगेन्द्र उप्रेती

- **संत सद्‌गुरु तथा माता-पिताका आशीर्वाद सम्पत्ति तथा सन्मति प्रदायक होता है ।**
- **समयसे पहले एवं भाग्यसे अधिक किसीको कुछ प्राप्त नहीं होता ।**
- **योग्य समयका अयोग्य निर्णय एवं अयोग्य समयका योग्य निर्णय दोनों एक जैसे ही हैं ।**
- **अतिशय प्रवृति एवं अतिशय निवृत्ति दोनों हानिकारक हैं ।**

पंचामृत

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि

समग्र विश्व उसी परमात्माके अधीन है। वही एक अमर तत्त्व है।

–ऋग्वेद

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ॥

इस दुर्लभ जीवनको पाकर भी जिस पुरुषने आत्माका साक्षात्कार नहीं किया, वह यथार्थमें आत्मघाती है।

–केनोपनिषद्

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न श्रृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥

भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्ग न नमेन्मुकुन्दम् ।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्या टरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥

मनुष्यके जो कान परमात्माके गुण–पराक्रम आदिकी चर्चा कभी नहीं सुनते, वे मात्र बिलके समान हैं। जो जीभ परमात्माकी लीला कथाका गायन नहीं करती, वह मेढककी जीभके समान अधम है।

जो मस्तक कभी श्री कृष्णके चरणोंमें नहीं झुकता, वह रेशमी वस्त्रसे सुसज्जित और मुकुट–मंडित होनेपर भी भारी बोझ मात्र है। जो हाथ परमात्माकी सेवा–पूजामें नहीं लगते, वे सोनेके कंगनसे विभूषित होने पर भी मुर्देके हाथके समान हैं।

–श्रीमद्भागवतमहापुराण

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

इस संसारकी परिपाटी है कि श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, लोकमें उसीका नाम धर्म पड़ जाता है और सामान्य लोग उसीका आचरण

करते हैं । अतः श्रेष्ठजन एवं सन्तजनोंको हंमेशा श्रेयष्कर कार्य करना चाहिए ।

-श्रीमद्भगवद्गीता

घर ही में न्यारे रहिए, कीजे अंतरमें बास ।
तब गुन वस आपे होवहीं, गयो तिमर सब नास ॥

इस शरीररूपी घरमें रहते हुए भी अन्तरात्मामें स्थित हो जाओ अर्थात् स्वयंको शरीरसे भिन्न आत्मा समझो । तब ये सब गुण, अङ्ग, इन्द्रियाँ आदि अपने आप वशमें हो जाएँगे । परिणाम स्वरूप अज्ञानका अन्धकार सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाएगा ।

-श्री तारतम सागर

आशीर्वाद

सुन्दरसाथजी, श्री ५ नवतनपुरी धाममें प्रति वर्षकी भाँति इस वर्ष भी फागोत्सवके पावन दिन श्री राजजी महाराजको १०८ राजभोगका पावन आयोजन सम्पन्न हुआ । इसी पावन दिन पर **नेपाल काठमाण्डौ निवासी धर्मपरायण श्री हरिशंकर श्रेष्ठके ज्येष्ठ सुपुत्र श्री विजयशंकरके जन्म दिन होनेसे १०८ राजभोगकी एवं पक्की रसोईकी समग्र सेवा परिवारजनोंने श्री विजयशंकर श्रेष्ठके नाम पर की ।** तदुपरान्त श्री कृष्ण प्रणामी धर्म पत्रिकाकी साहित्य सेवामें भी २५१/-रु अर्पण किये हैं ।

श्री विजयशंकर श्रेष्ठका जीवन आरोग्यके साथ-साथ धर्मपूर्ण बनी रहे, साथमें उनके समस्त परिवारमें दिन प्रतिदिन धार्मिक सद्भावनामें अभिबृद्धि हो एवं सुख शान्तिका वातावरण बना रहे इन्हीं शुभकामनाओंके साथ सभीको श्री ५ नवतनपुरी धाम एवं परम पूज्य आचार्य महाराजश्रीके शुभाशीर्वाद ।

-संपादक

फरवरी महिना- रसोईकी सेवा

०१)	धा.वा. पं. श्री टहलदासजी	श्री ५ नवतनपुरी धाम
०२)	श्री सुधाबेन चन्द्रकान्तभाई भावसार	वलसाड
०३)	श्रीमती गंगाबहन जयरामभाई सोजीत्रा	लोधिका
०४)	धा.वा. विरूबेन भाणजीभाई तथा भाणजीभाई धरमशीभाई फलदु ह. श्री लालजीभाई	अवाणीया
०५)	धा.वा. पुरुषोत्तमभाई कुंवरजीभाई भण्डेरी	नवसारी
०६)	धा.वा. पुरुषोत्तमभाई कुवरजीभाई भण्डेरी	नवसारी
०७)	धा.वा. कञ्चनबेन रतिलाल मावजीभाई खाणधर	उपलेटा
०८)	धा.वा. कान्तिभाई अमरसिंहभाई झाला	जामनगर
०९)	श्री नानजीभाई रामजीभाई भन्डेरी	मान्डासण
१०)	धा.वा. कचराभाई भीमाभाई कनारा. ह. फोगाभाई	गोकरण
११)	श्री बरा बहादुर यादव	मुम्बई
१२)	सन्त श्री नित्य गोपालदासजी(मौनीबाब)	मुम्बई
१३)	श्री खोडाभाई परबतभाई परसाणा	हरिपर
१४)	पं. श्री लक्ष्मीकान्त शर्मा	(बागडोगरा)दार्जिलींग
१५)	धा.वा. पुरीबेन खीमाभाई ओडेदरा	माल
१६)	श्री मयूर मगनभाई पाघडार	राजकोट
१७)	श्री रमेशभाई नाथाभाई मेन्दपरा	सुरत
१८)	श्री वाघजीभाई कानजीभाई सभाया	राजकोट
१९)	धा.वा. मगनभाई ठाकरशीभाई रामाणी ह. गायत्रीबेन मगनभाई रामाणी	जामनगर
२०)	डॉ. राकेशभाई धनसुखभाई पटेल	मोरा(सन्तरामपुर)
२१)	श्री केशुभाई गोबरभाई सावलीया	जामनगर
२२)	श्री वल्लभभाई वालजीभाई पडारीया	मोटा-मांडवा
२३)	श्री कुसुमबेन रमणिकभाई प्रागजीभाई वाढेर	गान्धीधाम (कच्छ)
२४)	श्री हरिशंकर श्रेष्ठ तथा श्री विजयशंकर श्रेष्ठ	काठमाण्डौ (नेपाल)
२५)	श्री यथार्थ के. भावसार	वलसाड
२६)	श्री नयनाबेन जशुभाई पटेल	हिम्मतनगर
२७)	श्रीमती डॉ. लक्ष्मीबेन अमीचंदभाई पटेल	हिम्मतनगर
२८)	श्रीमती सन्तोकबेन अरशीभाई पाणखणिया	लन्डन(यु.के)

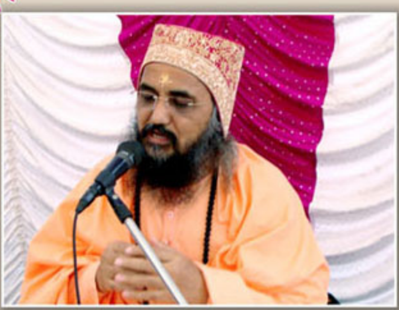

सिमरडा (आणंद), मोविया तथा गुंदासरा (राजकोट)
में आयोजित पारायण तथा सत्संग समारोहके विविध दृश्य

RNI No. GUJ BIL /2006/18311 Registration No. GJN-1 / 2009-2011

श्री ५ नवतनपुरी धाममें फागोत्सवके पावन दिनपर आयोजित १०८ राजभोगकी मनोहर झाँकी ।

श्री ५ नवतनपुरी धाममें फागोत्सवके पावन दिन पर फाग गायन करते हुए सुन्दरसाथजी

श्री ५ नवतनपुरी धामके दर्शनार्थ आए हुए गुजरात प्रदेश भाजप प्रमुख
श्री आर. सी. फलदुको आशीर्वाद देते हुए परम पूज्य आचार्य महाराजश्री

PRINTED BOOK

TO :

SHRI KRISHNA PRANAMI DHARMA PATRIKA
SHRI 5 NAVTANPURI DHAM JAMNAGAR - 361 001 (INDIA)